|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 1: अर्जुनविषादयोग

4/4 (श्लोक 37-47), शनिवार, 10 फ़रवरी 2024

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/B0gi-ZbLgiw

हतोत्साहित अर्जुन की मनोदशा और विषण्ण मन की पृष्ठभूमि

आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ प्रारम्भिक प्रार्थना एवं परम्परानुसार सुन्दर दीप प्रज्वलन के साथ किया गया। परम पूज्य स्वामी गोविन्ददेवगिरि जी महाराज के चरणों में वन्दन, भगवान श्रीकृष्ण की वन्दना करने के बाद सन्त श्री ज्ञानेश्वर महाराज एवं माता सरस्वती की वन्दना की गई। गीता माता तथा भगवान वेदव्यास जी को नमन किया गया।

सभी साधकों का विनम्र अभिवादन करते हुए बताया गया कि आशय में महत्तम और आकार में लघुत्तम ऐसा यह श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थ भगवान के मुखारविन्द से समराङ्गण में हतोत्साहित, विषाद ग्रस्त अर्जुन का मनोबल बढ़ाने के लिए एवं सम्पूर्ण मानव जाति के मार्गदर्शन के लिए प्रकट हुआ। हमारे अन्तरङ्ग में बजने वाली वीणा के तार का सङ्गीत इस गीत की वीणा के तार के साथ एकरूप हो जाए तो हमारा जीवन सङ्गीत भी मधुर हो जाता है। पाँच हजार एक सौ पच्चीस वर्ष पूर्व गाया हुआ यह मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ आज भी उतना ही प्रभावी है।

सातवें अध्याय में श्रीभगवान कहते हैं:

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

मैं सभी में व्याप्त हूँ। हम आज देखते हैं कि इण्टरनेट के द्वारा हम सब कहीं न कहीं एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, श्रीभगवान कहते हैं कि जिस प्रकार एक सूत्र में मोतियों को पिरोया जाता है उसी प्रकार मैंने सभी को पिरोया हुआ है, जोड़ा हुआ है। पाँच हजार वर्ष पूर्व भले ही परिस्थितियाँ भिन्न रही होंगीं, जैसे लोग घुड़सवारी करते थे, रथ का उपयोग करते थे, परन्तु मनःस्थिति वैसे ही थी जैसी हमारी आज है।

हमनें देखा कोरोना काल की विकट परिस्थिति में किस तरह लोगों ने इस गीत को गाकर, इसका सहारा लेकर अपना मनोबल बनाए रखा तथा विकट स्थितियों से बाहर निकल आए। आज भी मन: स्थिति वैसी ही है जैसे हजारों वर्ष पूर्व थी। इस कलयुग में मन के विकार जैसे काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि और भी तीव्र होते जा रहे हैं। मनुष्य जीवन की आपूर्ति में, सुख की चाह में प्रदर्शन को अधिक महत्त्व देते हुए, दूसरों को नीचा दिखाते हुए तनावग्रस्त होता चला जा रहा है, निराशा की ओर बढ़ता जा

रहा है, विषाद जैसी मनःस्थितियों से जूझ रहा है। हम इस महान मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ का पाठ कर सकें, इसे कण्ठस्थ कर सकें, इसी के लिए गीता परिवार की ओर से यह महायज्ञ चलाया जा रहा है।

हमने देखा कि पूर्ण प्रयास होने के बाद भी यह युद्ध अटल हो गया। दुर्योधन और अर्जुन दोनों के पास विकल्प; एक तरफ भगवान स्वयं थे और दूसरी तरफ उनकी ग्यारह अक्षौहिणी नारायणी सेना थी। दोनों के बीच में चुनाव करना था। तब अर्जुन ने अपने पक्ष में स्वयं भगवान को चुना। अर्जुन भगवान के मित्र भी हैं और भाई भी हैं, परन्तु वह बाद में एक प्रमुख भूमिका में आ जाते हैं और भगवान के शिष्य बन जाते हैं। जब तक अर्जुन श्रीभगवान का शिष्यत्व स्वीकार नहीं करते तब तक भगवान कोई उपदेश नहीं देते। अर्जुन नरोत्तम कहे जाते हैं। उनमें तब आत्मविश्वास भी है, परन्तु वह चाहते हैं कि भगवान उनके सारथी बने जिससे उनके मन के घोड़े की लगाम सही दिशा में रहे।

ऐसे अर्जुन अब अब युद्ध न करने के अनेक कारण बता रहे हैं। उनके मन की अवस्था दुर्बल हो गई है और वह भगवान से अपने अन्तरङ्ग के भाव प्रकट कर रहे हैं।

1.37

तस्मान्नार्हा वयं(म्) हन्तुं(न्), धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं(म्) हि कथं(म्) हत्वा, सुखिनः(स्) स्याम माधव।।1.37।।

इसलिये अपने बान्धव (इन) धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को मारने के लिये हम योग्य नहीं हैं; क्योंकि हे माधव! अपने कुटुम्बियों को मारकर (हम) कैसे सुखी होंगे?

विवेचन: अर्जुन फिर कारण देते हैं। कहते हैं कि हे माधव! क्या स्वबन्धुओं की हत्या करके हम सुखी हो पाएँगे? यहाँ पर युद्ध होने पर दोनों ओर से युद्ध में हमारे स्वजन मारे जाएँगे। अर्जुन देख रहे हैं कि दोनों ही तरफ अपने ही स्वजन हैं।

धृतराष्ट्र कह रहे हैं '**मामकाः**' इस शब्द में बहुत आसक्ति है और अर्जुन कह रहे हैं **स्वजन**। अर्जुन भी मनुष्य ही हैं और अपने लोगों के प्रति उनका राग इस शब्द से पता लगता है। अर्जुन यहाँ पर अपने गुरु, पितामह जैसे प्रेरणा स्थानों को देख रहे हैं और कहते हैं कि मैं इन्हें मारना नही चाहता। हम देखते हैं कि शिवाजी ने स्वराज अपनी माता जीजाबाई की प्रेरणा से प्राप्त किया था, ठीक उसी प्रकार से जीवन में प्रेरणा स्रोत का होना अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि उनके बिना जीवन जीने का कोई उद्देश्य ही शेष नहीं रह जाता है। इसी प्रकार हमारे जीवन में भी हमारे माता-पिता और गुरु इनका प्रेरणादायक स्थान होना ही चाहिए।

सन्त महात्मा भी अपने गुरु की प्रसन्नता के लिए, भगवान की प्रसन्नता के लिए कार्यरत रहते हैं।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज अपने गुरु के लिए कहते हैं-

किंबहुना तुमचे केले।

धर्म कीर्तन सिद्धीस नेले।

येथे माझे जो उरले।

पाइकपण ।

वह कहते हैं कि, यह जो भी धर्म-कीर्तन मैंने किया है, नौ हजार ओवियों की यह ज्ञानेश्वरी जो सिद्ध हुई है, यह सब मैंने नहीं, अपितु मेरे परमात्मा ने किया है और मैं उनके चरणों का दास हूँ। ज्ञानेश्वर महाराज अपने गुरुदेव के लिए ऐसा कह रहे हैं।

1.38

यद्यप्येते न पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं(न्) दोषं(म्), मित्रद्रोहे च पातकम्।।1.38।।

यद्यपि लोभ के कारण जिनका विवेक-विचार लुप्त हो गया है, ऐसे ये (दुर्योधन आदि) कुल का नाश करने से होने वाले दोष को और मित्रों के साथ द्वेष करने से होने वाले पाप को नहीं देखते, (तो भी) हे जनार्दन! कुल का नाश करने से होने वाले दोष को ठीक-ठीक जानने वाले हम लोग इस पाप से निवृत्त होने का विचार क्यों न करें? (1.38-1.39)

विवेचन: यद्यपि जिनकी बुद्धि लोभ से भ्रष्ट हो गयी है, वे कुलक्ष्य का पाप और मित्रद्रोह का पाप नहीं समझ सकते।

लोभ मन का विकार है और कामना शरीर का विकार है। जब धीरे-धीरे शरीर थकने लगता है तो कामना भी कमजोर हो जाती है, लेकिन लोभ कम नहीं होता। लोभ बहुत भयङ्कर मानस विकार कहा गया है। अपने पास सब कुछ होते हुए भी दूसरे की वस्तु को पाने का षडयन्त्र करना लोभ है।

अर्जुन कहते हैं कि कौरवों का चित्त तो लोभ से भरा हुआ है। खाण्डव वन को पाण्डवों ने अपने पुरुषार्थ से इन्द्रप्रस्थ नगरी में बदला था। दुर्योधन के पास हस्तिनापुर का राज्य होते हुए भी वह पाण्डवों से इसे छीनना चाहता था।

ऐसे लोग कुल का नाश करने का दोष नहीं समझ सकेंगे। मित्रद्रोह का पाप भी यह नहीं समझ सकते हैं, परन्तु हम इस दोष को जानते हुए भी, उसके पाप को जानते हुए भी उससे निवृत्त होने का मार्ग क्यों नहीं सोचते? यह अर्जुन का भी दोष कहा गया है। साधक सञ्जीवनी में कहा गया है- अर्जुन कहते हैं कि हम तो कोई षडयन्त्र नहीं करते, कोई पाप नहीं करते तो हम यह कार्य कैसे करें? यहाँ अर्जुन स्वयं की प्रशंसा कर रहे हैं।

साधक सञ्जीवनी कहती है, दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं को ऊँचा दिखाना यह भी एक दोष है। इससे मनुष्य दूसरों के केवल दोष ही देखता है और उन दोषों का चिन्तन करते-करते उसमें नकारात्मक उर्जा उत्पन्न हो जाती है और कभी-कभी वह दोष भी मनुष्य में सङ्क्रमित हो जाता है। हमारे सन्त कहते हैं कि हमें इससे बचना चाहिए। हमें महात्माओं के जीवन के प्रसङ्गों से सीखना चाहिए।

यहाँ स्वामी विवेकानन्द जी, जो गीता जी पर भी प्रवचन दिया करते थे, उनके जीवन का एक प्रसङ्ग देखना चाहिए। उन्हें अमेरिका में किसी सज्जन ने अपने घर बुलाया था। वह जब मुख्य द्वार तक पहुँचे तो वहाँ के चौकीदार ने उनका सावला रङ्ग देख कर उन्हें नीग्रो समझ कर अन्दर नहीं जाने दिया। तब मोबाइल सुविधा तो थी नहीं, अत: स्वामी विवेकानन्द जी ने वापस जाना उचित समझा। बाद में जब सज्जन उन्हें मिले तब उन्होंने प्रश्न किया कि आपको बुलाया था और आपका प्रवचन सभी को सुनना भी था, आप क्यों नहीं पधारे?

स्वामी विवेकानन्द जी ने उस घटना का वर्णन किया। सज्जन बोले कि चौकीदार से आप कह देते कि मैं नीग्रो नहीं भारतीय हूँ तो वह आपको अन्दर आने देता। स्वामी जी बोले मैं किसी को नीचा दिखाकर स्वयं को बड़ा नहीं दिखा सकता।

इसी तरह हमें भी किसी के दोष नहीं देखने चाहिए और यहाँ पर अर्जुन कौरवों के दोष दिखाकर स्वयं का बड़प्पन दिखा रहे हैं।

स्वामी रामदास जी कहते हैं कि कभी-कभी दोषों का भी चिन्तन करना पड़ता है जिससे कि हम उनको अपने जीवन से निकाल सकें और अपने जीवन से दूर रख सकें।

1.39, 1.40

कथं(न्) न ज्ञेयमस्माभिः(फ्), पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।1.39।।
कुलक्षये प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः(स्) सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं(ङ्) कृत्स्नम्, अधर्मोऽभिभवत्युत।।1.40।।

कुल का क्षय होने पर सदा से चलते आये कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और धर्म का नाश होने पर (बचे हुए) सम्पूर्ण कुल को अधर्म दबा लेता ह

विवेचन: अर्जुन के इतने कारण बताने के बाद भी श्रीभगवान शान्त हैं, इनका उन पर कोई प्रभाव नहीं है। यह देखते हुए अब अर्जुन और भी नए-नए कारण बता रहे हैं।

अब अर्जुन आगे बता रहे हैं कि कुल के क्षय होने से क्या हो सकता है? यहाँ पर अर्जुन स्वयं से भी बात कर रहे हैं।

कुल के नाश होने से कुल के धर्म का भी नाश हो जाएगा। धर्म का नाश हो जाने से सम्पूर्ण कुल में अधर्म बढ़ जाएगा। कुल धर्म का अर्थ- जैसे जो त्योहार हैं, उनका क्या महत्त्व है, उनको कैसे मनाया जाता है अथवा अपने-अपने कुल देवता की पूजा किस प्रकार होनी चाहिए यह सब नष्ट हो जाएगा। दीपावली के दिन हमें लक्ष्मीजी का पूजन कैसे करना है? जब घर में बड़े बताने वाले नहीं रहेंगे तो आगे तक यह संस्कार कैसे पहुँचेंगें?

सरल भाषा में धर्म का अर्थ जो हमें करना चाहिए, ऐसे कार्य जिनसे हमारा, हमारे कुल का, हमारे समाज और हमारे राष्ट्र का कल्याण हो तथा अधर्म का अर्थ, जो हमें नहीं करना चाहिए जिससे हमारा, कुल का, समाज का, राष्ट्र का पतन हो सकता है, तो जब पुरानी पीढ़ी नहीं बचेगी तो नयी पीढ़ी धर्म और अधर्म नहीं समझ सकेगी।

धर्म का पालन तभी हो सकता है जब हमारी कर्त्तव्य में प्रगाढ निष्ठा हो, चाहे भगवान में प्रगाढ निष्ठा न हो। जैसे रात के समय में चौराहे पर जब कोई देखने वाला नहीं होता है तब लोग सिग्नल तोड़ कर चले जाते हैं, परन्तु हमारी प्रगाढ़ निष्ठा रही तो हम वह सिग्नल नहीं तोड़ेंगे। इसी तरह धर्म पर प्रगाढ़ निष्ठा होने से संयम भी रहता है। यह तभी सम्भव है जब कुल धर्म का पालन होता है। यह तभी होगा जब एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में धर्मानुसार गुण सङ्क्रमित होंगें।

1.41

अधर्माभिभवात्कृष्ण, प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय, जायते वर्णसङ्करः।।1.41।।

हे कृष्ण! अधर्म के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं; (और) हे वार्ष्णेय! स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर पैदा हो जाते हैं।

विवेचन: अर्जुन धर्म भीरू हैं। भगवान में उनकी प्रगाढ़ निष्ठा है। अब अर्जुन कहते हैं कि हे कृष्ण! अधर्म के बढ़ जाने से कुल की स्त्रियांँ दूषित हो जाएँगी। भगवान श्रीकृष्ण का जन्म वृष्णी कुल में हुआ इसलिए अर्जुन कहते हैं कि हे वार्ष्णेय! अन्य लोगों का उनके साथ उचित व्यवहार नहीं करने से वर्ण सङ्कर उत्पन्न हो जाएगा।

हमारी सनातन संस्कृति में चार वर्ण हैं: **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र**।

चार आश्रम हैं: **ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम।**

चार पुरुषार्थ हैं: **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।**

चार साधना के मार्ग हैं: **ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग।**

यह सोलह खम्भें हमारी सनातन वैदिक संस्कृति का आधार भूत हैं।
जब माता-पिता दोनों समान वर्ण के होते हैं तब सन्तान में उस वर्ण के गुण अधिक प्रभावशाली होते हैं। जैसे अगर माता-पिता दोनों डॉक्टर होते हैं तो उनकी सन्तान एक अच्छी डॉक्टर हो सकती है, जब माता-पिता दोनों राजघराने से होते हैं तब उनकी सन्तानें रानी लक्ष्मीबाई, रानी पद्मिनी जैसे तेजस्वी होती हैं।

अर्जुन का कहना है कि धर्म होने से पाप वृत्ति बढ़ जाएगी। ऐसे समय में पाप न करूँ, ऐसी वृत्ति नहीं होती पर मैं पाप करते हुए देखा न जाऊँ, यही वृत्ति रह जाती है। ऐसे में निर्भयता से पाप होने लगता है। भ्रष्टाचार शिष्टाचार में बदल जाता है। मनुष्य की लज्जा खत्म हो जाती है।

1.42

सङ्करो नरकायैव, कुलघ्नानां(ङ्) कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां(लुँ), लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥1.42॥

वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जाने वाला ही (होता है)। श्राद्ध और तर्पण न मिलने से इन (कुलघातियों) के पितर भी (अपने स्थान से) गिर जाते हैं।

विवेचन: अब अर्जुन आगे कहते हैं कि वर्ण सङ्कर होने से नर्क के दरवाजे खुल जाएँगे, क्योंकि पुत्र कौन? पिता कौन? यह ज्ञात न होने से पितरों को तर्पण देने की क्रिया प्राय: लुप्त हो जाएगी। हमारी संस्कृति में पितरों को श्रद्धापूर्वक जल देकर तर्पण किया जाता है जिससे कि उनकी आत्मा की मुक्ति हो सके।

इस प्रकार की मिलीजुली भावना लगभग सभी देशों में होती है। जैसे हम श्राद्ध पक्ष मानते हैं, वैसे ही सिंगापुर में भी लोग अपने पूर्वजों के लिए श्रद्धा से कई सारी चीज एकत्रित करके रखते हैं और उन्हें श्रद्धा से याद करते हैं।

अर्जुन का कहना है कि यह सब कुछ युद्ध होने के पश्चात लुप्त हो जाएगा।

1.43

दोषैरेतैः(ख्) कुलघ्नानां(वँ), वर्णसङ्करकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः(ख्), कुलधर्माश्च शाश्वताः॥1.43॥

इन वर्णसंकर पैदा करने वाले दोषों से कुलघातियों के सदा से चलते आये कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं।

विवेचन: अब अर्जुन अपनी कारण मीमांसा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि यह दोष आने से और वर्ण सङ्कर हो जाने से परम्परा से चले आए हुए जाति धर्म और कुल धर्म नष्ट हो जाएँगे। नयी पीढ़ी को धर्म सिखाने वाले, नैतिक मार्ग दिखाने वाले कुल के लोग नहीं बचेंगें।

1.44

**उत्सन्नकुलधर्माणां(म्), मनुष्याणां(ञ्) जनार्दन।
नरकेऽनियतं(वँ) वासो, भवतीत्यनुशुश्रुम॥1.44॥**

हे जनार्दन! जिनके कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं, (उन) मनुष्यों का बहुत काल तक नरकों में वास होता है, ऐसा (हम) सुनते आये हैं।

विवेचन: अर्जुन कहते हैं कि जिनका कुल धर्म नष्ट हो जाता है, उनके पूर्वज नरक में अनियमित काल के लिए रह जाते हैं, ऐसा सुना है।
यह सारे भाव, विचार सब अर्जुन के मन में हैं, जो वह श्रीभगवान को बता रहे हैं। श्रीभगवान अभी तक कुछ नहीं बोल रहे हैं। ग़लत सोचते-सोचते अर्जुन कहाँ तक आ गए। उनकी तेजस्विता अब धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। अर्जुन कहते हैं कि हे केशव! हम कितना बड़ा पाप करने जा रहे हैं।

1.45

**अहो बत महत्पापं(ङ्), कर्तुं(वँ) व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन, हन्तुं(म्) स्वजनमुद्यताः॥1.45॥**

यह बड़े आश्चर्य (और) खेद की बात है कि हम लोग बड़ा भारी पाप करने का निश्चय कर बैठे हैं, जो कि राज्य और सुख के लोभ से अपने स्वजनों को मारने के लिये तैयार हो गये हैं।

विवेचन: अर्जुन अब तनिक आश्चर्य भी कर रहे हैं कि, इतना बड़ा पाप होगा यह हमने अभी तक कैसे नहीं सोचा।

हम अपने राज्य के सुख के लिए अपने ही लोगों की हत्या करने को तैयार हैं। कितना बड़ा पाप हम करने वाले हैं। रोते-रोते अर्जुन कहाँ तक आ गए। अर्जुन पाप भीरू हैं।

महापुरुष कहते हैं कि पाप से डरना चाहिए। कभी-कभी हमें भगवान से डराया जाता है। यथार्थ में भगवान तो अन्तर्यामी हैं। वे सब जानते हैं। वे तो सबके जीवन का मार्ग उन्नयन करते हैं और पाप से बचने के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। पानी के तेज प्रवाह से डरना चाहिए, बिजली से हमेशा सुरक्षित रहना चाहिए, विद्युत का भय होना चाहिए। इसी तरह जीवन में सुरक्षित रहने के लिए भय का होना भी कभी-कभी अनिवार्य होता है।

1.46

**यदि मामप्रतीकारम्, अशस्त्रं(म्) शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्, तन्मे क्षेमतरं(म्) भवेत्।।1.46।।**

अगर (ये) हाथों में शस्त्र-अस्त्र लिये हुए धृतराष्ट्र के पक्षपाती लोग युद्धभूमि में सामना न करने वाले (तथा) शस्त्र रहित मुझ को मार भी दें (तो) वह मेरे लिये बड़ा ही हितकारक होगा।

विवेचन: यह सब कहते-कहते अर्जुन अब अन्त में कहने लगे कि अगर मैं शस्त्र न भी उठाऊँ तो धृतराष्ट्र के पुत्र अपने हाथ में शस्त्र लेकर इस युद्ध में मेरी हत्या कर देंगें, यह निश्चित है और अगर ऐसा होता है तो वह भी मेरे लिए कल्याणकारी ही होगा।

अर्जुन का सोचना है कि वह अपने राज्य भोग के सुख के लिए यह युद्ध कर रहे हैं, इसलिए वह अपने स्वजनों को मारने चले हैं। यह अर्जुन का दृष्टिकोण है, परन्तु भगवान आगे उनका दृष्टिकोण बदलने वाले हैं। अर्जुन को ज्ञात नहीं है कि वह भगवान का अर्थात सृष्टिकर्ता का कार्य कर रहे हैं।

इसी तरह श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य का दृष्टिकोण बदलने वाला पाथेय है।
मेरे स्वयं का जीवन मेरे अपने लिए नहीं, मैं सृष्टि कर्ता के लिए जी रहा हूँ, यह ज्ञान देने वाला ग्रन्थ गीता है।

ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन के भाव ओवी में बड़ी सुन्दरता से बताते हैं:

तैसे राज्यभोगसमृद्धि, उज्जीवन नोहे जीवबुद्धि। एथ जिव्हाळा कृपानिधि, कारुण्य तुझें ॥ ६८ ॥

तुझा अंतराय होईल । मग सांगें आमचें काय उरेल ।
तेणें दुःखे हियें फुटेल । तुजवीण कृष्णा ॥ २३४ ॥

अर्जुन कहते हैं कि जो जीव बुद्धि है उसका उन्नयन राज्य सुख भोग से नहीं होगा। हे भगवान! इस सबसे मैं आपसे दूर हो जाऊँगा और यह मुझसे सहन नहीं होगा। यह सारे गुण मैंने इसलिए धारण किए ताकि मैं आपके निकट आ सकूँ, आपका अनुग्रह प्राप्त कर सकूँ। एक-एक गुण मैने अपने जीवन मे धारण किया है। हे केशव! यह सब मैंने तुम्हें पाने के लिए किया है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि अर्जुन ने यह सब भगवान के समीप रहने के लिए किया है और अर्जुन को डर है कि अब वह युद्ध रुपी पाप करेंगे और इस कर्म से श्रीभगवान से दूर हो जाएँगे, इसलिये वह कहतें हैं कि मैं शस्त्र नही उठाऊँगा और यह युद्ध नही करुँगा, चाहे मुझे तीनो लोकों का राज्य मिल जाये। ऐसा कहते-कहते उन्होंने अपना गाण्डीव नीचे रख दिया।

1.47

सञ्जय उवाच एवमुक्त्वार्जुनः(स्) संख्ये, रथोपस्थ उपाविशत्।विसृज्य सशरं(ञ्) चापं(म्), शोकसंविग्नमानसः।।1.47।।

संजय बोले - ऐसा कहकर शोकाकुल मन वाले अर्जुन बाण सहित धनुष का त्याग करके युद्धभूमि में रथ के मध्य भाग में बैठ गये।

विवेचन: अब आगे सञ्जय वर्णन करते हैं और बताते हैं कि जिनका मन शोकाकुल हो गया, मन उद्विग्न हो गया, ऐसे अर्जुन ने अपना धनुष और बाण नीचे रख दिये और रथ में पीछे की ओर जाकर बैठ गए। नरोत्तम अर्जुन की ऐसी मनोदशा की पार्श्वभूमी जानने का भी प्रयास करते हैं।

इस विषय में गुरुजी एक महत्त्वपूर्ण बात बताते हैं कि युद्ध से पहले पाण्डवों के मन में इन सब बातों को प्रेरित और प्रेषित करने के लिए सञ्जय को भेजा गया और यह सारी बातें पाण्डवों के सामने सञ्जय ने कही। धृतराष्ट्र ने कहा कि मेरे पुत्र तो धर्म नहीं जानते लेकिन आप सब तो धर्म के अनुगामी हैं तो आप सब तो इस बात का विचार कर सकते हैं। इस प्रकार यह युद्ध होने से कुल का नाश होगा और यह युद्ध नहीं होना चाहिए। यह सारी कारण मीमांसा अर्जुन के मन में डालने के लिए धृतराष्ट्र ने सञ्जय को भेजा। धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन और नकुल तीनों ही युद्ध के विरुद्ध हो गए। भीमसेन इसके बारे में तटस्थ हो गये। केवल सहदेव युद्ध के लिए तैयार थे। द्रौपदी सोचती थी कि यह युद्ध उसके लिए हो रहा है और वह कहने लगी कि वह अपने पिता, भाइयों और सहदेव को साथ लेकर युद्ध करेगी। श्रीभगवान ने बाद में द्रोपदी को भी यह ज्ञान दिया और उसकी भ्रान्ति को शान्त

किया कि क्या तुम्हारे केश इतने बड़े युद्ध का बोझ उठा सकेंगें?

हम सब यह आज भी समाज में देख रहे हैं कि आज भी बड़ा ही मनोवैज्ञानिक दबाव सज्जनों पर डाला जाता है। उन्हें शान्त रहने और अन्याय को चुपचाप सह लेने के लिए प्रायः परामर्श दिया जाता है। यह मानसिक द्वन्द्व भी निरन्तर चलता रहता है और हमारे अन्दर अच्छाई और बुराई की लड़ाई हमेशा चलती रहती है।

तुकाराम महाराज कहते हैं:

रात्रंदिना आम्हा युद्धाचा प्रसंग
अंतर्बाह्य जग आणि मन।

अर्थात रात-दिन यह विकारों और विचारों का युद्ध हमारे अन्दर और बाह्य जगत में चलता रहता है।

इस समय में तीन पाण्डवों ने युद्ध से मना कर दिया और अर्जुन अपना मनोबल पूरी तरह से टूट जाने पर धनुष बाण नीचे रखकर रथ के पीछे जाकर बैठ गए। ऐसा प्रायः कहा भी जाता है:

मन के जीते जीत है मन के हारे हार।

मनोबल ही जीवन का सम्बल है।

अंग्रेजी की बहुत ही प्रसिद्ध पङ्क्तियाँ हैं:

If wealth is lost, nothing is lost,
If health is lost, something is lost,
If character is lost, everything is lost.

और स्वामी जी ने इसमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण एक पङ्क्ति और जोड़ दी है:

If confidence is lost, everything is lost for ever.

अगर मनुष्य का आत्म बल टूट गया तो उसके लिए दोबारा उबरने का मार्ग नहीं बचता।

अब इस मनःस्थिति से श्रीभगवान अर्जुन को कैसे आगे लेकर जाएँगे, इसका वर्णन हम आगे के अध्याय में देखेंगे।

यह अध्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है कि युद्ध से पहले विषाद से घिरे हुए अर्जुन किस प्रकार मनोबल को खो देते हैं और उनकी इस दशा का वर्णन इसमें है।

मनुष्य का मनोबल अगर टूट गया तो वह हतोत्साहित हो जाता है। जीवन में आगे बढ़ने के और उभरने के सारे मार्ग खो बैठता है। अर्जुन की ऐसी ही स्थिति हो गई है। श्रीमद्भगवद्गीता विषण्ण आत्मा को प्रसन्न करने वाला अद्भुत ग्रन्थ है।

ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन की मनःस्थिति बताते हैं-

जेणे संग्रामी हरू जिंतिला । निवातकवचांचा ठावो फेडिला ।
तो अर्जुन मोहें कवळिला । क्षणामाजि ॥ २०० ॥

इतने पराक्रमी अर्जुन किस प्रकार स्वजनों के मोह में व्याकुल हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अर्जुन की पङ्क्ति में बैठने वाले हर जीव को अपने जीवन के उन्नयन के लिए पाथेय प्रदान करती है। गीता जी का मुख्य स्वर है कि हमारा मनोबल टूटने न पाए।

मेरे अन्दर क्या चल रहा है और मुझे किस प्रकार सही मार्ग का चयन करना चाहिए यही श्रीमद्भगवद्गीता हमें सिखाती हैं।

There is a voice inside of you
That whispers all day long,
"I feel this is right for me
I know that this is wrong."
No teacher, preacher, parent, friend
Or wise man can decide
What's right for you--just listen to
The voice that speaks inside you.

मुझे पता है, क्या सही है और क्या गलत है।
इसी सुन्दर भाव के साथ गुरुजी और ज्ञानेश्वर महाराज के चरणों में वन्दन करते हुए आज का विवेचन समाप्त हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर:

प्रश्नकर्ता: निर्मला दीदी
प्रश्न: स्त्रियों के दूषित होने के सन्दर्भ में बताइए?
उत्तर: हमारी संस्कृति में विवाह संस्था का महत्त्व है। गुरुजनों को और भगवान को साक्षी मानकर विवाह किया जाता है तथा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश होने से जो सन्तति उत्पन्न होती है, वह ग्राह्य होती है। विवाह बिना सन्तति को अगाह्य माना जाता है। प्रकृति ने स्त्री को एक दायित्व दिया है कि वह एक अच्छी सन्तान को जन्म दे। आजकल की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ इस ओर अच्छा ध्यान दे रही हैं।

गुरुदेव कहते हैं कि गर्भावस्था में महाभारत पढ़ने से जो सन्तान होगी, वह वीर होगी। स्त्री को मर्यादा का वरदान है। आजकल बेटियों को यह माता द्वारा बताना चाहिए कि प्रकृति का मिला हुआ यह वरदान है। युद्ध के समय जो परिस्थिति उत्पन्न होगी, उस समय स्त्रियों का शोषण होने के कारण परिस्थितिवश स्त्रियों के दूषित होने का के बारे में कहा गया है।

प्रश्नकर्ता: जयश्री जी
प्रश्न: आपका विवेचन बहुत ही सुन्दर था और मुझे भी ज्ञात है कि मैंने भी ईर्ष्यावश गलती की है और किसी का नुकसान किया है। आपने पिछले विवेचन में स्वामी जी की गीता भाव दर्शन पुस्तक के बारे में बताया था, क्या उसमें विवेचन भी मिलेंगे?
उत्तर: जी हाँ, पूरे अट्ठारह अध्यायों के बहुत ही सुन्दर विवेचन मिलेंगे और आपने अपनी ग़लती के बारे में बताया तो मनुष्य गलतियों का पुतला है और जो ग़लती को ठीक कर लेता है उसी को इंसान कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता को भी माँ कहा गया है:

अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिनीम्-

और जिस तरह से माँ अपने पुत्र की बहुत सारी कमियों को और गलतियों को क्षमा करके उसे दिल से लगा लेती है। इसी तरह से अब आपके जीवन में गीता जी का पदार्पण हो गया है तो आप भी अपनी पिछली भूलों को भूलकर गीता जी द्वारा दिखाए मार्ग पर चलेंगे तो अपने आप गीता जी आपको अपने दिल से लगा कर आपका मार्ग प्रशस्त करती जाएँगी।

प्रश्नकर्ता: मीना जोशी जी

प्रश्न: महाभारत में जो नाम हैं वे उनके जन्म के समय से हैं या बाद में उन्हें विशेषण के तौर पर मिले हैं?
उत्तर: उनके जन्म के समय भी कुछ सोचकर ही नाम दिए गए हैं, जैसे दुर्योधन का अर्थ होता है जिसे युद्ध में कोई जीत न सके। दु:शासन का अर्थ है जिस पर कोई शासन न कर सके। यह कहना कठिन है कि नाम के गुण उनमें संङ्क्रमित हो गए। नाम का भी प्रभाव होता है क्योंकि अपने बालकों के नाम रखते हुए हम उनसे वैसी ही अपेक्षा करते हैं। धृतराष्ट्र का अर्थ है - दूसरों का राज्य हड़पने वाला तो शायद भगवान वेदव्यास जी ने उन्हें यह नाम दिया हो क्योंकि उन्होंने ही गीता जी का सम्पादन किया है, तो इस के बारे में ठीक से अनुमान लगा पाना भी कठिन लगता है।

प्रश्नकर्ता: दिनेश जी
प्रश्न: गोद लिए हुई सन्तान पिण्ड दान कर सकती है क्या?
उत्तर: हाँ जी, बिल्कुल कर सकती है क्योंकि उनके भी सब तरह के पूर्व सञ्चित संस्कार होते हैं।

प्रश्नकर्ता: राजश्री जी
प्रश्न: कहते हैं कि सङ्गति का असर होता है और गुण सङ्क्रमित होते हैं। भीष्म पितामह कौरव और पाण्डव दोनों के पितामह थे तब कौरवों का चरित्र अलग कैसे है?
उत्तर: जैसे कि स्कूल में बताया जाता है कि कचरा नहीं फेंकना है, लेकिन फिर भी कुछ बच्चे फेंक देते हैं। डस्टबिन में जाकर नहीं डालते तो इस तरह से कुछ स्वयं के संस्कार होते हैं। विद्यालय में सभी विद्यार्थी एक समान नहीं होते लेकिन हम उन्हें समान बनाना चाहते हैं क्योंकि हम चाहते हैं कि समाज में अच्छाई बढ़े।

दुर्योधन ने तो स्वयं कहा भी है:

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

मैं धर्म को जानता हूँ, पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। मेरे हृदय में स्थित कोई देव है, जो मुझसे जैसा करवाता है, वैसा ही मैं करता हूँ।

श्रीभगवान ने भी कहा है:

यथेच्छसि तथा कुरु।

श्रीभगवान ने भी अच्छे और बुरे का चुनाव स्वयं से करने की स्वतन्त्रता दी है। अट्ठारहवें अध्याय में भगवान कहते हैं कि तुम्हें विस्तार से सब कुछ समझा दिया है। अब यह तुम पर है, तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत सत - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'अर्जुनविषादयोगनामक' पहला अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||

Sum-Hi-1(4_4)-VW-L3Jun23-100224/4392/v4/240213-0841